शिक्षा के सामाजशास्त्रीय सिद्धांत-III

संघर्ष के सिद्धांत - मार्क्सवाद

अमन मदान
अनुवाद : मनोज कुमार झा

शिक्षा के साथ समाज के संबंध को समझने का फंक्शनलिस्ट दृष्टिकोण, खासकर किसी समाज अथवा संस्था की संभावित जरूरतों की बात करता है। यह जानना चाहता है कि किसी समाज के विभिन्न अंगों के बीच सौहार्द बनाने तथा उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने लिए कैसी शिक्षा चाहिए। समाज तथा शिक्षा के बीच संबंध को देखने का यह एक सार्थक तरीका है, लेकिन कई लोगों के लिए यह अपूर्ण और तस्वीर के एक अहम हिस्से को नजरअंदाज करने वाला है। आज भारत के स्कूलों और कालेजों की ओर देखने पर हम यह कहने में कठिनाई महसूस करते हैं कि फंक्शनल जरूरतें किसी तरह भी पूरी हो रही हैं। यदि ऐसा होता, तो फिर हर जगह से तीखी शिकायतों का हो-हल्ला क्यों मचता। हमारे स्कूलों में से अनेक जिस भयानक स्वरूप में है तथा वहां से शिक्षा ग्रहण कर निकले लोगों के बीच घोर अज्ञानता एवं शिक्षा के अभाव की जो भयावह स्थिति है वह सवाल उठाती है कि कैसे कोई भारतीय शिक्षा व्यवस्था को फंक्शनल कह सकता है। पहले हम अंग्रेजों को दोष देते थे। लेकिन उनके देश छोड़ने के सत्तर सालों के बाद भी ऐसा क्यो है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में अभी भी बहुत सीमित क्षेत्र हैं, जिनमें शिक्षा ठीक और कुछ अच्छा करती प्रतीत होती है। कुछ फंक्शनलिस्ट कहते हैं कि स्कूलों में कम संख्या में छात्रों को भेजने तथा इससे भी कम संख्या में छात्रों को कारगर कालेज शिक्षा उपलब्ध करवाने वाली शिक्षा व्यवस्था वास्तव में हमारे समाज के लिए फंक्शनल है। यदि समाज के पास बहुत से शिक्षित युवाओं के लिए रोजगार नहीं है, तो इनकी बड़ी संख्या पैदा करना अनुपयोगी होगा। लेकिन जो बाहर छूट गये हैं तथा वे जो भयानक रूप से उबाऊ कक्षाओं को झेलते हैं, सवाल उठाते हैं कि यह किसके लिये फंक्शनल है? निश्चय ही यह उस सुरेश के लिए फंक्शनल नहीं है, जिसने बीए किया है और जो पूरे दिन एक दुकान में सहायक के तौर पर काम करता है। जो कुछ उसने हिन्दी साहित्य की मोहक कक्षाओं में पढ़ा है, उसका यहां कोई उपयोग नहीं है। रेहाना अपनी छोटी फैक्ट्री के लिए वेल्डर और मैकेनिक रखती है और वह बहुत नाखुश है कि इन लोगों के पास सामान्य गणना की इतनी क्षमता भी नहीं है कि पता कर सकें कि क्या एक साथ फिट बैठेगा और क्या नहीं। वह भी नहीं मानती कि शिक्षा व्यवस्था उसकी जरूरतों के लिए फंक्शनल है।

शिक्षा प्रणाली के प्रति इस असंतोष समूह और खिन्नता को समझने के लिए सिद्धांतों का एक अलग समूह उभरा। फंक्शनलिस्टों के विपरीत ये दृष्टिकोण कहते हैं कि विभिन्न समूहों के बीच संघर्ष के कारण समाज ऐसा है। शक्तिशाली समूहों का एजेंडा, दूसरे समूह क्या चाहत रखते हैं, इस पर भारी पड़ता है। संघर्ष के सिद्धांतकार कहते हैं कि अनेक बच्चे खराब स्कूलों में कमजोर होते जाते हैं क्योंकि भारत में प्रभावशाली व ताकतवर लोग स्कूली शिक्षा में सुधार के लिए दिल से इच्छा नहीं रखते। ताकतवर लोग शिक्षा प्रणाली में पैसा लगाने की बजाय तेज रफ्तार में कार दौड़ाने के लिए सुपर-हाईवे बनाने में सरकारी पैसा खर्च करवाने में ज्यादा रुचि दिखाते हैं। उनकी ज्यादा दिलचस्पी छोटे-छोटे तकनीकी प्रशिक्षण संस्थान स्थापित करने में

है, जो फैक्ट्रियों के लिए मजदूर मुहैया करा सकते हैं, बजाय एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करने में, जो लोगों को सशक्त बना सके तथा अपने बारे में सोचने के लिए शिक्षित कर सके। संघर्ष के दृष्टिकोण बताते हैं कि हमारी शिक्षा व्यवस्था की यह स्थिति विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच संघर्ष और उनकी संबंधित संस्कृतियों व कार्य सूचियों के बीच रस्साकसी के कारण है।

ऐसी कई सैद्धांतिक परंपराएं उभरी हैं, जो समाज में संघर्ष पर विचार करती हैं। हम यहां पहले मार्क्सवादी परंपरा के बारे में बात करेंगे और फिर देखेंगे कि भारतीय शिक्षा की समस्याओं की हमारी समझ नव-मार्क्सवादी और वेबरवादी दृष्टिकोणों के जरिए कैसे बेहतर की जा सकती है। चूंकि संस्कृतियों तथा हितों के टकराव इतने स्पष्ट हैं कि कई बार लोग निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि फंक्शनलिज्म बिलकुल निरर्थक है। हमारे आस-पास इतना ज्यादा संघर्ष और कलह है कि वे सहज ही फंक्शनलिस्टों के इरादे पर संदेह करना शुरू कर देते हैं। संभव है फंक्शनलिस्ट महज सत्ताधारियों को प्रसन्न रखने के लिए मासूम छात्रों की आंखों में धूल झोकने के लिए बकवास कर रहे हों। मैं स्वीकार करता हूं कि समाजशास्त्र तथा सामाजिक मानव विज्ञान के अपने अध्ययन के पहले कुछ सालों में मैं भीं यही सोचता था। अब मैं महसूस करता हूं कि सचमुच फंक्शनलिस्टों से काफी कुछ अहम सीखने को है। खासतौर पर यह पूछना कि किसी समाज को आगे बढ़ने और उसके साथ न्याय के लिए क्या आवश्यकताएं होती हैं। फिर भी यह अधूरा है क्योंकि हमें यह भी जानने की आवश्यकता है कि हमारे देश में न्याय व खुशहाली के रास्ते की बाधाएं क्या है।

मार्क्सवादी सिद्धांत व शिक्षा

कार्ल मार्क्स के लेखन ने शिक्षा के अवलोकन हेतु एक सशक्त और प्रभावशाली दृष्टिकोण को प्रेरित किया है। मार्क्स ने कहा है कि हमारी शिक्षा व संस्कृति किसी ईश्वर- सरीखे स्रोत से नहीं आयी है, जिसने इसे अंतिम, परिपूर्ण स्वरूप में हमें सौंपा हो। इसके विपरित, हम मनुष्यों ने अपनी समस्याओं से जूझते हुए तथा उन समस्याओं के समाधान की कोशिश हेतु ज्ञान का विकास करते हुए अपनी अवधारणाओं तथा संस्कृति को स्वयं रचा है। उसने कहा है कि प्रारंभिक मानवों ने जीवित रहने तथा अपने लिए जीवन को आसान बनाने के लिए आदिम किस्म के हथियार विकसित किये, एक ऐसे वातावरण में जहां वे प्रतिकूल तत्वों से घिरे थे। ये हथियार भौतिक या यथार्थ-मूलक के साथ-साथ मानसिक भी थे। मनुष्यों के पास बाघ जैसे पंजे अथवा हाथी सरीखी मांसपेशियां नहीं थीं। इसकी जगह, हमने एक संस्कृति विकसित की, जहां हमने परस्पर संपर्क और सहयोग करना सीखा। एक साथ मिलकर काम करने और धीरे-धीरे अपने भौतिक परिवेश को बदलते हुए हमने आगे बढ़ना शुरू किया। मानवों ने अपने बच्चों को भी यह संस्कृति सिखायी ताकि वे उन पीड़ा और कठिनाइयों से बच सकें, जिसे पूर्व की पीढ़ियों ने भुगता था। हमारी संतानें उन मानसिक व भौतिक औजारों में उत्तरोत्तर परिवर्धन करते हुए उन्हें फिर अपनी संतानों को सिखाती गई।

ज्ञान कभी भी अंतिम और संपूर्ण नहीं था। एक समय में, जब मानव पहले जंगल साफ करके भूमि हासिल करना चाहते थे, जिसमें वे बीज बो सकें, तब उनके पास पर्यावरणीय संरक्षण का विचार या उसकी समझ नहीं थी। जब उन्होंने बाढ़ और भूमिक्षरण आदि के नतीजों को महसूस करना शुरू किया, केवल तभी लोगों ने पर्यावरण के बारे में सोचना समझना शुरू किया। कई बार हम वह सबक भी भूल जाते हैं, जिसे हमने बड़ी कीमत पर सीखा होता है और फिर से उसे सीखना पड़ता है। हमने अपना जीवन जीने के लिए क्या किया, इसके बारे में बात करने के लिए मार्क्स ने एक शब्द ''प्रैक्सिस'' (praxis) का प्रयोग किया है। प्रैक्सिस से उसका तात्पर्य उन क्रियाकलापों से था, जो अवधारणाओं तथा ज्ञान द्वारा संचालित थे। हमारे अनुभवों और क्रियाकलापों ने हमें अपने ज्ञान के अर्जन को प्रेरित किया। और हमारे ज्ञान ने हमारे क्रियाकलापों को निर्देशित किया, फिर नये अनुभवों ने हमारे ज्ञान को पुनर्गठित किया और यह श्रृंखला चलती रही। विभिन्न तत्वों के बीच यह निरंतर अंतःक्रिया, जिसने पूर्णतया एक नया स्वरूप रचने के लिए दोनों तत्वों को बदल दिया, को मार्क्स ने ''द्वंद्वात्मकता'' (dialectics) कहा था।

ज्ञान अपनी प्रकृति में इतिहास-मूलक था। स्कूली विषय हमेशा से नहीं थे बल्कि इतिहास के निश्चित काल में कुछ अनुभवों तथा नाकामियों और उन नाकामियों से मिली सीखों के जरिए प्रकट हुए थे। उदाहरण के लिए, जब कुछ समुदायों के लोग दूर की जगहों के लिए नियमित यात्रा करने लगे, उन्होंने भूगोल नामक व्यवस्थित अध्ययन का सृजन किया। इस तरह की व्यवस्थित जानकारियों ने उन लोगों को बहुत लाभ पहुंचाया, जो ढेर सारा धन पाना अथवा नये क्षेत्रों पर जीत हासिल करना चाहते थे। यही भूगोल स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों में भी पढ़ाया जाने लगा। इस दौर से पहले, स्कूलों में बच्चों को पढ़ाने के लिए भूगोल एक विषय के तौर पर नहीं था। बाद में भूगोल के नये संस्करण उभरने लगे। बहुत से लोगों की दिलचस्पी युद्ध अभियान के लिए किसी क्षेत्र के मापन में नहीं रह गई थी। बजाय इसके उनकी रुचि यह जानने में थी कि आखिर क्यों किसी देश के कुछ हिस्से गरीब और दूसरे हिस्सें समृद्ध थे। उनकी दिलचस्पी यह जानने में थी कि जलवायु क्यों बदल रही है और क्यों कुछ स्थानों पर सूखा है और कुछ स्थानों में बाढ़। ये बदलाव नये संदर्भों के प्रकट होने तथा ये उन संदर्भों के साथ लोगों की अंतःक्रिया से सामने आये।

मार्क्स के विवेचन में एक केन्द्रीय विचार था कि विभिन्न घटकों के बीच अंतःक्रिया एवं संघर्ष हमेशा था। वह मानता था कि हमारा जीवन हमेशा से द्वन्द और संघर्ष से भरा था। यह हमेशा एक बुरी शै नहीं थी, क्योंकि यह प्रयत्न ही था जिसने नयी धारणाएं और काम करने के नये तरीकों के विकास के लिए हमें प्रेरित किया। यह ठंड के साथ संघर्ष था, जिसने गर्म कपड़े बनाने और गर्मी पैदा करने को प्रेरित किया। जैसे-जैसे समाज अधिक जटिल बनते गये, सामाजिक समूहों के बीच द्वंद्व उभरते गये। इसने देखने और काम करने के अलग- अलग तरीकों के लिए प्रेरित किया। इस परस्पर विरोध का असर स्कूलों में क्या होता है उस पर भी पड़ा।

मार्क्स ने गहरी जड़ों वाले कारणों से जन्म लिए संघर्षों को ‘‘अंतर्विरोध’’ कहा। वह मानता था कि पूरी प्रकृति के साथ-साथ मानव समाज के भीतर भी कुछ बुनियादी अंतर्विरोध थे। अंतर्विरोधों को लेकर संघर्षों ने समाज को गतिशील तथा सतत परिवर्तनीय होना सिखाया। मार्क्स की विशेष दिलचस्पी श्रम संसार में उभरे अंतर्विरोधों में थी। किसी दुकान अथवा फैक्ट्री मालिकों तथा उनके लिए काम करने वालों के बीच तनाव व हितों को लेकर मतभेद था। अंतर्विरोध यह था कि जब केवल कुछ लोगों के पास संसाधन थे तथा अन्य के पास उनके लिए काम करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था, मालिक लोग बाकियों पर अनुचित दबाव डालते थे। जो उत्पादन के साधनों के स्वामी थे और वे जिनके पास उनकी देह के सिवाय उत्पादन के साधन नहीं थे, के बीच के अंतरों ने समाज में विभिन्न वर्गों के उभार को प्रेरित किया। किस तरह से वर्ग उभरे तथा विभिन्न वर्गों के बीच संबंधों की समझ के विभिन्न तरीकों पर एक पूर्ववर्ती आलेख में विचार किया जा चुका है, जहां हमने देखा कि कैसे वर्गीय ढांचे से शिक्षा प्रभावित हुई।

शिक्षा तक में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के केन्द्र में यह विचार है कि भिन्न सामाजिक समूह हैं (खासकर वर्ग) तथा उनके अलग- अलग अनुभवों ने भिन्न तरह की संस्कृतियों और ज्ञान के विकास को प्रेरित किया। संस्कृतियों के बीच के अंतर्विरोधों ने बिल्कुल अलग किस्म की संस्कृतियों तथा परिप्रेक्ष्यों का निर्माण किया। उदाहरण के लिए, श्रमिक, जिन्होंने मालिकों द्वारा शोषित महसूस किया है वे संदेह का एक रवैया विकसित कर सकते हैं और मानने लग सकते हैं कि मालिक और प्रबंधक उनके मरने तक उनसे श्रम कराना चाहते हैं। प्रबंधकों और मालिकों, जिन्होंने श्रमिकों से सहयोग प्राप्त करना कठिन पाया, शायद यह विश्वास करने लगें कि कठोर परिश्रम करना नैतिक रूप से अच्छा है और ये श्रमिक आध्यात्मिक रूप से भ्रष्ट हैं, जो महज अलसियाना चाहते हैं।

मार्क्स ने संभवतः जिसे वर्गीय चेतना कहा है, उसके ये कुछ उदाहरण थे। लोगों द्वारा उनके प्रयत्नों के जरिए सृजित होने के नाते ज्ञान विश्वव्यापी और कालनिरपेक्ष नहीं था। संघर्षों को लेकर विभिन्न वर्गों का अनुभव और नजरिया भिन्न था, अतः उनके पास अलग-अलग तरह के ज्ञान थे। मार्क्स का विश्वास था कि समाजों और स्कूलों के पास ऐसा ज्ञान नहीं है, जो सर्वत्र सही हो। इसकी जगह उनके पास जो ज्ञान था वह विशिष्ट वर्गों का उत्पाद था और कौन सी जानकारी सही और कौन गलत है, इसे लेकर विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष था। मार्क्स ने कहा कि मालिकों

ने श्रमिकों के बीच ''झूठी चेतना'' (फाल्स कन्शसनेस) फैलाने के प्रयत्न किये, जहां श्रमिकों ने मानना शुरू कर दिया कि जो कुछ मालिकों के लिए अच्छा है, उनके लिए भी अच्छा है। मालिकों की मान्यताएं, मूल्य, और ज्ञान स्वयं श्रमिकों द्वारा सत्य और सही समझी गयीं। इसे झूठा (फाल्स) कहा गया क्योंकि यह तभी हो सका जब श्रमिकों ने अपने अनुभवों तथा अपने तार्किक निहितार्थों की अनदेखी की।

मार्क्स ने खुद स्कूलों और शिक्षा को लेकर बहुत नहीं लिखा। फिर भी, उनसे प्रेरित अनेक लोगों ने, स्कूलों में क्या होता है, को लकर व्यापक अध्ययन मनन किया। जिस ढंग से वे स्कूलों को देखते थे, उनका जो परिप्रेक्ष्य वर्गों और विभन्न सामाजिक समूहों के बीच संघर्ष को रेखांकित करता है तथा पड़ताल करता है कि कैसे स्कूल एक ऐसी जगह है, जहां भिन्न तरह की चेतनाओं के बीच एक द्वंद्व है और जहां ताकतवर एक ऐसी चेतना के निर्माण का प्रयास करते हैं, जो उनके अनुकूल है।

वर्चस्व, संस्कृति एवं बुद्धिजीवी

अंतोनियो ग्राम्शी (1891-1937) इटली का एक वामपंथी नेता था, जिसने संस्कृति और शिक्षा पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण को लेकर उल्लेखनीय काम किया। वह इटली के फासीवादी शासक बेनिटो मुसोलिनी के विरोध में सक्रिय था, और उसे कई सालों तक मुसोलिनी द्वारा जेल में रखा गया था। जेल से रिहा होने के बाद जल्दी ही उसकी मृत्यु हो गयी थी। जेल में ग्राम्शी ने अपने विचार कुछ नोटबुकों में लिखे जिन्हें छुपाकर बाहर लाया गया। इन नोटबुकों ने हमारी संस्कृति और उसमें होने वाली राजनीति की समझ के विकास में बहुत योगदान दिया है। ग्राम्शी ने अपने देश में आस-पास की गरीबी और किस तरह राजनीतिज्ञों, बड़े भूस्वामियों एवं उद्योगपतियों ने जनता को छला था, उसको स्वयं देखा था। वह इस बात से परेशान था कि लोग एक स्पष्ट तौर पर दिख रही निरंकुश सरकार व नाजायज सामाजिक व्यवस्था का विरोध क्यों नहीं करते, उसके विरुद्ध खड़े क्यों नहीं होते। जैसी स्थितियां थीं, जनता ने उसे स्वीकार क्यों कर लिया, उन पर सवाल क्यों नहीं उठाया? ग्राम्शी ने सोचना शुरू किया कि समाज के शक्तिशाली समूहों द्वारा प्रोत्साहित संस्कृति और शिक्षा इसके लिए जिम्मेदार हैं। यह संस्कृति ऐसा भान करवाती है कि जो कुछ भी समाज में है वह सही है और जो कुछ हो रहा है वह श्रेष्ठ है। इसने ऐसा जताया कि खुद के अस्तित्व के लिए समृद्ध लोगों पर निर्भर होने के अलावा भुखमरी का दूसरा कोई विकल्प नहीं है। यह सब प्राकृतिक लगने लगा। ग्राम्शी ने इस अत्याचार की उपस्थिति को स्वाभाविक और अपरिहार्य समझने को उच्च वर्गीय संस्कृति का 'वर्चस्व' (हेजीमनी) कहा। श्रमिकों एवं शोषित वर्गों की वर्ग चेतना पर इनका इतना प्रभुत्व था कि वे भी उनकी तरह सोचने लगे थे। उनकी कल्पनाशक्ति उच्च वर्ग के वर्चस्व के अधीन थी तथा वे ऐसे किसी कर्म को समझने अथवा कोई विचार या धारणा बनाने और विवेचना करने में असमर्थ थे, जो उन्हें इस नियंत्रण से मुक्ति दिला सकती थी।

हालिया समाज विज्ञान में, ग्राम्शी द्वारा परिचित करायी गयी वर्चस्व की अवधारणा का, बहुत व्यापक उपयोग हुआ है। इसका उपयोग यह समझने के लिए किया गया कि ऐसा क्यों है कि महिलाएं अपने दमन के प्रति राजी होती हैं। महिलाओं को बताया जाता है कि उनका काम पुरुषों की सेवा करना है और जो कुछ भी गाली-गलौज और मारपीट उनके साथ की जाती है, उसे चुपचाप सहन करना उनका कर्तव्य है। अनेक महिलाएं इस पर विश्वास करने लगती हैं और उनके साथ जो भी किया जाता है, उसका विरोध करना बंद कर देती हैं। यहां तक कि वे इसे सही मानने लगती हैं कि बिना ऐसे नियंत्रणों व प्रतिबंधों के वे खुद एक अच्छा जीवन जीने में असमर्थ होंगी। ग्राम्शी ने जब वर्चस्व शब्द का प्रयोग किया था तब वो इसी बारे में बात कर रहा था। कई अध्येताओं व सामाजिक-कार्यकर्ताओं ने अनेक स्वरूपों की पहचान की है, जिनमें वर्चस्व कार्य करता है। भारत में अनेक दलित विश्वास करने लगे थे कि भूमिहीनता और उच्च जातियों द्वारा अपमानित होना उनका भाग्य था। उन्होंने कहा कि यह उनके किसी पूर्व जन्म के कुकर्मों के कारण अथवा उनके खुद के खराब नैतिक चरित्र की वजह से था। सामाजिक-कार्यकर्ताओं ने कहा है कि यह कुछ भी नहीं, बल्कि कुछ ऊंची जातियों द्वारा निर्मित सांस्कृतिक वर्चस्व था। असल में 'दलित' पद जिसका अर्थ अत्याचारित होता

है जाति की उपस्थिति को एक सामान्य व स्वाभाविक व्यवस्था के रूप में देखने की मनःस्थिति को तोड़ने का एक तरीका था। वस्तुतः यह ताकतवर द्वारा दमन व शोषण का एक रूप था।

वर्चस्व का निर्माण पूरी संस्कृति द्वारा होता है, जिसमें धर्म और शिक्षा शामिल है। आज के भारत में यह स्थापित हो चुका है कि प्रायः हमारी स्कूली शिक्षा में, इंजीनियरिंग व मेडिसिन के क्षेत्र में करियर का लक्ष्य वर्चस्वशाली हो गया है। यह स्वाभाविक लगता है कि जब कोई हाई स्कूल में जाता है तो उसका लक्ष्य ये करियर होते हैं। यदि ऐसे स्कूलों में कोई कहता है कि वो कुछ और करना पसंद करेगा या करेगी तो उसे सनकी या नाकाम समझा जाता है। 'कुछ और' एक संभावना हो सकती है, यह विचार एक आश्चर्य की तरह लगता है और कुछ अस्वाभाविक जैसा समझा जाता है।

संस्कृति, हमारे विचारों तथा क्रिया कलापों के माध्यम से स्वयं मनुष्यों द्वारा बनाई गई है। इसीलिए, संस्कृति व शिक्षा क्षेत्र के मार्क्सवादी समाजशास्त्रियों की इस बात में दिलचस्पी रही है कि, वर्ग चेतना कैसे बनती है तथा झूठी चेतना और वर्चस्व का निर्माण कैसे होता है। ग्राम्शी ने संकेत किया है कि मनुष्य विचारों का सृजन करता है और उन्हें इस या उस ढंग से प्रस्तुत करता है। इन गतिविधियों के जरिए हम अपने निकटतम संसार को समझने का प्रयास करते हैं और उन दृष्टिकोणों का उपयोग अपनी आगे की गतिविधियों के मार्गदर्शन हेतु करते हैं। जो कोई विचारों और संस्कृतियों को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं, ग्राम्शी ने उन्हें बुद्धिजीवी कहा है। बुद्धिजीवी महज वे ही नहीं होते, जिन्होंने विश्वविद्यालय की उपाधि हासिल की है और मोटा चश्मा पहनते हैं तथा किताबें व लैपटाप ढोते हैं। जो श्रमिक अपने जीवन की स्थितियों को समझते हैं तथा दूसरों की भी समझने में मदद करते हैं, वे भी बुद्धिजीवी हैं। कोई भी, जिसने ज्ञान को सुव्यवस्थित किया है तथा चीजों को एक निश्चित ढंग से समझने में दूसरों की मदद की है वह एक बुद्धिजीवी है। शिक्षक भी बुद्धिजीवी हैं क्योंकि उन्होंने खयालातों को सुव्यवस्थित किया और उन्हें एक असरदार ढंग से अपने छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

ग्राम्शी ने कहा है कि बुद्धिजीवीगण अपने समाज से गहराई से जुड़े होते हैं और इससे अलग नहीं रहते। जैसे -जैसे सामाजिक वर्ग उभरे, वे अपने बुद्धिजीवी पैदा करने को प्रवृत्त हुए। ग्राम्शी ने इन्हें अंगीभूत बुद्धिजीवी का नाम दिया और कहा कि वे अपने वर्ग के नजरिए से विचारों व गतिविधियों को सुव्यवस्थित करते हैं। अतः प्रबंधक भी बुद्धिजीवी हैं, जिन्होंने विचारों तथा व्यवहारों व चीजों को इस तरह पेश करने के तरीकों का निर्माण किया, जो स्वामियों हेतु बड़े मुनाफों के लिए श्रमिकों पर नियंत्रण के उनके एजेंडे के उपयुक्त थे। बड़े उद्योगपतियों ने बुद्धिजीवियों को संरक्षण दिया जिन्होंने दुनिया को उनके नजरिए से देखा तथा उनके अपने वर्ग के एजेंडे को आगे बढ़ाने में उपयोगी सूचनाएं व अन्तर्दृष्टि पदान की। ग्राम्शी ने स्वयं को श्रमिकों के एक अंगीभूत बुद्धिजीवी के रूप में देखा, जो मजदूरों के एजेंडे के लिए उपयुक्त विचारों का सृजन कर रहा था। ग्राम्शी ने कहा है कि पारंपरिक बुद्धिजीवियों का भी अस्तित्व है, जो सुदूर अतीत में कभी उभरे थे और अब अपनी मूल वर्गीय स्थिति से संपर्क खो चुके हैं। उनकी उपस्थिति स्वतंत्र होने जैसी होती है, जैसे कि पुरोहित होते हैं जो कि ऐसा लगता है कि सांसारिक मामलों से अलग खड़े हैं, लेकिन इसके बावजूद आज भी इनके छिपे रिश्ते किसी न किसी वर्ग से होते हैं।

जो लोग हमारे समय में ग्राम्शी के विचारों को लागू करते हैं, कहते हैं कि शिक्षा के लिए चुनौती यह है कि यह ताकतवर के वर्चस्व को स्थापित करती है अथवा कमजोरों को सशक्त बनाने वाली संस्कृतियों का निर्माण करती है। जब हम शिक्षकों को प्रशिक्षित करते हैं तो सवाल उठता है कि वे ताकतवर लोगों के एजेंडे के प्रचारक बनते हैं अथवा हम उन्हें ऐसे बुद्धिजीवी बनने को शिक्षित कर रहे हैं, जो नये विचार व सोच रच सकते हैं तथा कमजोरों को उनके विचार व कर्म को व्यवस्थित करने में मदद कर सकते हैं। प्रश्न है कि क्या शिक्षक कमजोरों को अपनी 'फ्रेक्सिस' (आचारों) को मजबूत बनाने में मदद कर सकते हैं तथा कमजोरों को उनकी अपनी दमनचक्र की स्थितियों से बाहर निकलने योग्य बना सकते हैं।

शिक्षा के लिए यह सैद्धांतिक दृष्टिकोण कहता है कि हमारे पास चयन की स्थितियां है, उदाहरण के लिए, भूगोल कैसे पढ़ाया जाय। क्या इसमें हमें सिर्फ इस बारे में बताना चाहिए कि हमारे देश में कहां-कहां संसाधन हैं या हमें यह भी बताना चाहिए कि खनिज संपदा से समृद्ध जंगलों में कौन लोग रहते हैं, और वर्तमान में कौन से वर्ग भूमि पर कब्जा जमाने के प्रयास में हैं? शायद स्कूल और शिक्षा, मजबूर आदिवासियों को बेदखल करने हेतु कानूनों में छेड़छाड़ करने वालों द्वारा की जा रही हिंसा व अन्याय को समझने में छात्रों की मदद कर सकते हैं। शिक्षा और शिक्षाविदों के समक्ष प्रश्न यह है कि क्या वे प्रभावशाली वर्गों तथा अन्य सामाजिक समूहों के वर्चस्व को प्रचारित करते हैं अथवा वर्चस्व के प्रतिकार को।

शिक्षा के समाजशास्त्र के मार्क्सवादी दृष्टिकोण में कई धाराएं हैं। कुछ लोग काफी कुछ आशावादी हैं कि शिक्षा एक ऐसी जगह है, जहां अधिक समानता के लिए संघर्ष हमारे देश की दशा में सार्थक सुधार ला सकता है। दूसरे, अधिक निराशावादी हैं और सोचते हैं कि इसमें बहुत कम गुंजाइश है और यह एक ऐसा क्षेत्र बना रहेगा, जहां ताकतवरों के वर्चस्व को बढ़ावा मिलता है, जब तक कि हमारे बाकी समाज में कोई जबरदस्त राजनीतिक बदलाव नहीं आता। अगले आलेख में इस परंपरा में हुए कुछ और कामों की पड़ताल हम करेंगे। ◆

लेखक परिचयः जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्रा का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्रा के प्रोफेसर हैं।

संपर्कः amman.madan@apu.edu.in

संदर्भ और अतिरिक्त रीडिंग्स :

Feinberg, Walter, and Jonas S. Soltis. 1998. School and Society. New York and London: Teachers College Press, Columbia University. Chapter "Marxist theory and education"

Gramsci, Antonio. 2000. "Intellectuals and Education." In The Antonio Gramsci Reader: Selected Writings 1916-1935, edited by David Forgacs, 300-322. New York: NYU Press.

Marx, Karl. (1844) 1974. The Economic and Philosophical Manuscripts. Translated by Gregor Benton. https://www.marxists.org/archive/marx/works/download/pdf/Economic-Philosophic-Manuscripts-1844.pdf. Section "Estranged labour"

• • •

मुख्य आवरण के चित्रकार मूर्तिकार...

शशिकांत चार्बे महाराष्ट्र के नागपुर के रहने वाले चित्रकार मूर्तिकार हैं। चार्बे अर्द्धचित्र और म्यूरल बनाते हैं। ये अपने अर्द्धचित्रों के साथ रंगों का प्रयोग इस तरह करते हैं कि ये कृतियां चित्र और मूर्ति दोनों का आभास देती हैं। इनकी कला का विषय आम जन-जीवन ही रहता है मगर ये बच्चे और उनसे जुड़े विषयों की अभिव्यक्ति में सिद्धहस्त हैं। इनकी कलाकृतियों की अनेक प्रदर्शनियां आयोजित हो चुकी हैं तथा इनकी कृतियां देश-विदेश में संग्रहीत हैं। ◆